eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

महाभारत में धर्म का स्वरुप

कु0 आँचल[1]
[1]शोधार्थिनी, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Received: 20 March 2026 Accepted & Reviewed: 25 March 2026, Published: 31 March 2026

Abstract

महाभारत में धर्म का स्वरूप अत्यंत जटिल, बहुआयामी और संदर्भपरक रूप में प्रस्तुत हुआ है। धर्म को केवल नैतिकता या कर्तव्य के रूप में नहीं, बल्कि जीवन के समग्र संतुलन और सामाजिक व्यवस्था के आधार के रूप में देखा गया है। महाभारत के विभिन्न प्रसंगों में धर्म की व्याख्या परिस्थितियों के अनुसार बदलती हुई दिखाई देती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि धर्म स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील और व्यावहारिक है। युधिष्ठिर को धर्मराज के रूप में चित्रित किया गया है, जो सत्य, न्याय और कर्तव्य के पालन के आदर्श हैं, वहीं श्रीकृष्ण धर्म के व्यावहारिक और नीति–प्रधान स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं, जहाँ धर्म की रक्षा के लिए कभी–कभी नीति और चातुर्य का सहारा भी लिया जाता है। महाभारत यह दर्शाता है कि धर्म केवल शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं, बल्कि समय, स्थान और परिस्थिति के अनुसार उचित निर्णय लेने की क्षमता है। युद्ध, सत्ता, परिवार और व्यक्तिगत संबंधों के बीच धर्म की परीक्षा होती है, जहाँ सही और गलत के बीच स्पष्ट रेखा नहीं होती। इस प्रकार महाभारत में धर्म का स्वरूप सापेक्ष, परिस्थितिनिष्ठ और मानवीय मूल्यों से युक्त है, जो आज भी सामाजिक और नैतिक चिंतन के लिए प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द– महाभारत, कर्तव्य, नैतिकता, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, धर्म–संकट, सामाजिक न्याय

Introduction

महाभारत भारतीय संस्कृति का बृहत्तम एवं महत्वपूर्ण प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसमे धर्म की अवधारणा को न्याय,सत्य, नैतिकता तथा स्वधर्म के माध्यम में से अत्यन्त व्यापक एवं बहुआयामी रूम में प्रस्तुत की गयी है। महाभारत में धर्म से आशय केवल धार्मिक कर्मकांड की सीमितता से नहीं है बल्कि धर्म सामाजिक और दार्शनिक पक्षों को स्पष्ट करता है तथा मनुष्य के कर्तव्य, नैतिकता, न्याय , सत्य व स्वधर्म से जुड़ा सिद्धांत है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य महाभारत में वर्णित धर्म के स्वरुप का विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार अध्ययन करना है,और स्पष्ट किया गया है कि धर्म का स्वरुप एकपक्षीय तथा स्थिर नहीं है,धर्म का निर्धारण विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार होता है जहाँ धर्म-अधर्म का निर्णय करना अत्यंत दुष्कर हो तब श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वधर्म की उद्घोषणा करते है **"स्वधर्मे निधनं परधर्मो भयावह:।"** जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना ही धर्म है।

धर्म का स्वरूप- भर्तृहरि लिखते है- **'निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तुलक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम अद्येव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा'**(नीतिशतक75) इसका तात्पर्य यही हुआ कि न्याय, धर्मयुक्त मार्ग के पथ से एक पग भी विरुद्ध नहीं जाता वे ही धीर पुरुष होते हैं। **महर्षि दयानन्द** जी ने आर्य समाज के पाँचवे नियम में कहा है। सब काम धर्मा-6 नुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर ही करना चाहिए | दश लक्षणात्मक धर्मपालन से उत्तम गति होती है। इसका प्रमाण मनुमहाराज लिखते हैं-

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

'दशलक्षणानि धर्मस्य यो विप्रो समधीयते । अधित्य ध्वानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्' ॥(मनुस्मृति) अर्थात धर्म के लक्षणों का जो द्विज पढ़कर मनन करके इसका पालन करते है वे उत्तम गति को प्राप्त करते है। वर्त्तमान में जो धर्म के नाम पर आडम्बर हो रहा, अनेक मत -मतान्तर चल रहे वे त्याज्य और वेद विरुद्ध है।

भारतीय शास्त्रीय परम्परा में धर्म वह सिद्धांत है,जो संसार, समाज और व्यक्ति का निर्माता है, वेद से लेकर उपनिषद्, धर्मशास्त्र, महाभारत में धर्म को जीवन आधार माना गया है। **धर्म शब्द धृ धारणे धातु से मन् प्रत्ययपूर्वक पुल्लिंग** अर्थ में प्रयुक्त हुआ जिसका अर्थ है- '**धारण करना**' वामन शिवराम आप्टे ने **'संस्कृत हिंदी शब्दकोश'** में स्पष्ट किया है **'ध्रियते लोकोनेन धरति लोकम् वा'** धर्म ऐसा तत्व है जो व्यक्ति को देशकालानुसार आचरण की प्रेरणा देकर समाज में रहने योग्य बनाता है अस्तु यहाँ स्पष्ट है की धर्म साम्प्रदायिक अर्थ का वाचक नहीं अपितु धर्म का अर्थ गुणों को धारण करना है जिससे मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करता है **वैशेषिक सूत्र** भी इसी अर्थ की पुष्टि करता है- **'यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिःस धर्मः(१.१.१.)** वही ऋग्वेद में धर्म को 'ऋत' कहा गया है **'ऋतं च सत्यं चाभिध्दात् तपसोध्यजायत' (१०.१९०.१.)** ऋतं और सत्य ही सम्पूर्ण जगत की व्यवस्था का आधार है। वही मनुस्मृति में कहा गया है कि मनुष्य को ऐसे अर्थ, काम का परित्याग कर देना चाहिए

जो धर्म के विपरीत हो **'परित्यजेदर्थकामौ यौ स्याताम् धर्मवर्जितौ' (४.१७६)**और वेदो को धर्म का मूल माना वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरेव च ॥ (मनुस्मृति 2/6) इसी अध्याय में वेद,स्मृति,सदाचार एवं मन की प्रसन्नता को भी धर्म का मूल मानते है 'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।'(मनुस्मृति २.१२) तथा आचार्य मनु ने धर्म के दश लक्षण बताएं है-

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्' ॥(मनुस्मृति ६.९२)

वही याज्ञवल्क्य स्मृति में याज्ञवल्क्य नें धर्म लक्षणों को धर्म का साधन कहा- "अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनं (याज्ञवल्क्यस्मृति १.१२९) तथा आत्म दर्शन को परमधर्म कहा इज्याचार दमो अहिंसा दानं स्वाध्याय कर्मणम् , अयं तु परमो धर्मो यद्योगे नात्मदर्शनम् (2.8) वही आचार्य देवल के अनुसार जो व्यवहार हमारे प्रतिकूल है वह व्यवहार हमें दुसरो के प्रति नहीं करनी चाहिए व्यवहार का यही रुप धर्म का सर्वस्व है 'श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'।(देवल) इस प्रकार हम देखते है कि सम्पूर्ण भारतीय ज्ञानपरम्परा में धर्म शब्द के विविध अर्थ एवं उसके स्वरुप पर विचार किया गया है।

महाभारत में धर्म का स्वरुप- महाभारत के विशाल कलेवर में धर्म के विविध पक्षों का विस्तार मिलता है। अनेक घटनाओ संवादो और प्रसंगो के माध्यम से महर्षि वेदव्यास स्पष्ट करते हैं कि धर्म मानव जीवन का एकांगी पक्ष नहीं है बल्कि संपूर्ण मानव जीवन की नैतिक व्यवस्था है।महाभारत में धर्म क्या है? इसका उल्लेख दो स्थानों पर समान रूप से कहा गया है। कर्णपर्व मैं कहा गया है की,धारण करने के कारण धर्म को धर्म कहा जाता है,धर्म ही समाज को धारण करता है, जो धारण युक्त है वही निश्चित रूप से धर्म है। लगभग ऐसी ही सामानता धर्म के विषय में शांतिपर्व में भी मिलती है।

'धरणाद धर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजाःयत् स्याद धारणसंयुक्तम् स धर्म इति निश्चयः।'(कर्णपर्व -६९/५८) 'धारणाद् धर्ममित्यायुधर्मेण विधुताः प्रजाः यः यद धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः'(शान्तिपर्व १०९/११) और धर्म किसके लिए है ?धर्म मनुष्यों के लिए है। धर्म मनुष्य मात्र का ही विशिष्ट गुण कहा गया है, अन्य जीवधारियों का नहीं आहार, निद्रा,भय और मैथुन यह सारे गुण पशु और मनुष्यों में समान रूप में है किंतु धर्म ही है जो मनुष्य को मर्यादित करता है।

"आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषोधर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥"(शांतिपर्व २९४/२९) युधिष्ठिर ने जब कृष्ण से कहा की जनार्दन, विद्वान् पुरुष धर्म अनेको प्रकार का और बहुत द्वारवाला बताते है, वास्तव में उसका लक्षण क्या है ?तब श्रीकृष्ण ने

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

निश्चत लक्षण बताया की राजन अहिंसा,शौच,क्रोध का अभाव ,शम,दम,सरलता ये धर्म के निश्चत लक्षण है -हिंसा शौचमक्रोधमानृशंस्यं दमः शमः । आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्रितं घर्मलक्षणम् ।।(आश्वमेधिक पर्व - अध्याय ६२)

महाभारत के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महाभारतकालीन धर्म का स्वरूप।कर्तव्यस्वरूप धर्म, न्यायस्वरूप धर्म,लोक कल्याणार्थस्वरूप धर्म तथा परिस्थितिजन्यस्वरुप धर्म का प्रमाण मिलता है

कर्त्तव्यस्वरूप धर्म - महाभारत के युद्ध में जब सर्वश्रेष्ठ योद्धा अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान में अपने बंधु बंधुओं को देखकर संशय में पड़ जाते हैं तब श्रीकृष्ण उनके क्षत्रियधर्म का स्मरण कराते है -

'स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते॥'(भगवद्गीता2/31) एक योद्धा के रूप में स्वधर्म को ध्यान में रखते हुए यह जानना चाहिए की इस धर्म के लिए युद्ध करने से बढ़कर तुम्हारे लिए अन्य कोई कार्य नहीं इसलिए संकोच की आवश्यकता नहीं है। अर्जुन का युद्ध क्षेत्र में संकट और श्रीकृष्ण का आदेश देना मात्र नहीं था, बल्कि गीता के 18 अध्यायों में जीवन के कर्तव्यता और अकर्तव्यता के अस्तित्व का विश्लेषण और जीवन के वास्तविकता के गहनतम प्रश्नों का विश्लेषण है। अर्जुन की दुविधा एक सार्वभौमिक मानवीय अनुभव को दर्शाती है और श्रीकृष्ण सीखाते हैं कि- व्यक्ति का स्वधर्म ही अनूठा धर्म है अपना धर्म पूर्ण रूप से निभाना दूसरों के धर्म का पूर्ण रूप से पालन करने से कहीं बेहतर है वह स्वकर्मों को करते हुए मरना दूसरों के कर्म में संलग्न होने से बेहतर है क्योंकि दूसरों के मार्ग का अनुसरण करना भयावह हो सकता है|

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥" (गीता ३.३५)

गीता का यह उपदेश आधुनिक जीवन में गहराई से मेल खाती है, जब हम अपने स्वधर्म के अनुरूप होते हैं तब कामना स्वाभाविक और सार्थक लगता है। चाहे कठिन ही क्यों ना हो जब स्वधर्म से विचलित होते हैं तब सफलता भी खोखली लगती है श्रीकृष्ण कर्तव्य पालन को ही धर्म का मूल आधार बताएं है और स्वधर्म से विमुख होना ही अधर्म है। और इस सिद्धांत के अनुसार गुरु का धर्म है शिक्षा देना, शिष्य का धर्म है अध्ययन करना, राजा का धर्म है प्रजा रक्षण करना जब प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्वधर्म का पालन करते हैं तभी समाज में संतुलन बना रहता है।

परिस्थितिजन्यस्वरूप धर्म - जीवन बहुत विशाल एवं जटिल है और जीवन के अनेक पक्षों के निर्धारण का संबंध परिस्थितियों के अनुरुप होता है, महाभारत शिक्षा देता है कि धर्म सर्वदा सरल और एक जैसा नहीं होता। महाभारत की अनेक प्रसंगों से स्पष्ट होता है कि कई बार व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जहां धर्म का निर्णय करना कठिन हो जाता है। भीष्म पितामह महाभारत के सबसे महान धर्मनिष्ठ पात्र माने जाते हैं वे जानते थे कि पांडव धर्म के पक्ष में है, फिर भी हस्तिनापुर के सिंहासन की रक्षा की प्रतिज्ञा से प्रतिबद्ध राजधर्म को प्राथमिकता दिए। वही युद्ध में आचार्य द्रोण को पराजित करना लगभग असंभव था, 'अश्वत्थामा हतः' की योजना श्री कृष्ण की थी यद्यपि उन्हें पता था कि वह हाथी था, यहाँ असत्य बोलना अधर्म था, 'न सत्यात् परमो धर्मः' किंतु युद्ध परिस्थिति में अधर्म पर धर्म का युद्ध था, इसलिए यह रणनीति अपनाई गई। ऐसी ही परिस्थिति दानवीर कर्ण के साथ थी कर्ण जानते थे की दुर्योधन अधर्म के मार्ग पर है जहाँ धर्म है वही विजय है- 'यतो धर्मस्ततो जयः' फिर भी साथ नहीं छोड़े यहां कर्ण मित्रधर्म को प्राथमिकता दिए भले ही परिणाम उनके विरुद्ध गया। जब भीम और दुर्योधन के मध्य गदा युद्ध में भीम ने दुर्योधन की जंघा पर प्रहार किया तब यह युद्ध नियमों के विरुद्ध था किंतु यहां स्पष्ट था कि दुर्योधन ने द्रोपदी का अपमान किया था इसीलिए अधर्म का अंत करना ही परिस्थितिजन्य धर्मयुद्ध था।

सत्य न्यायस्वरूप धर्म-महाभारत में सत्य, अहिंसा, दया आदि को विभिन्न स्थानों पर धर्म कहा गया है युधिष्ठिर को धर्मराज कहा जाता है क्योंकि ये सत्यवादी थे ,महाभारत के शांति पर्व में युधिष्ठिर से भीष्म कहते हैं- सत् पुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं, झूठ से बढ़कर कोई पातक नहीं अतएव सत्य का लोप नहीं करना चाहिए है , सत्य ही धर्म आधारशिला है

" सत्यं सत्सु सदाधर्मः सत्यं धर्मः सनातनः ।सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः ।।४।।

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्व सत्ये प्रतिष्ठतम् ।।५।

eISSN 3049-2610
Research Stream
A Bi-Annual, Open Access Pear Reviewed International Journal
Volume 03, Issue 01, March 2026

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।स्थितिहि सत्यं धर्म स्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत् ॥२४॥(शान्तिपर्ण - अध्याय १६४, श्लोक ४, ५, २४) और राजा को न्याय की रक्षा करने वाला सत्याभाषी तथा उचित दंड देने वाला होना चाहिए यही राजधर्म है 'सम्यग्दण्डे स्थितिर्थों धर्मो वेदक्रतुक्रियाः। व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथ। (अनुशासनपर्व- अध्या० १४१,श्लो० १५) और राजा को धर्म के अनुसार ही शासन करना चाहिए क्योंकि राजा का आचरण ही समाज के लिए आदर्श बनता है -'धारणाद् धर्ममित्यायुधर्मेण विधुताः प्रजाः,यः यद धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः(शान्तिपर्व १०९/११)

स्पष्ट है कि धर्म को स्थिर और अपरिवर्तनीय सिद्धांत नहीं माना गया है धर्म का निर्णय समय स्थान कर्तव्य और परिस्थिति के अनुसार किया गया है धर्म की महत्ता पर श्री कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है कि आवश्यकता पड़ने पर धर्म के संस्थापनार्थ पृथ्वी पर पुनः पुनः अवतरित होंगे-'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ '(4.7)

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' (4.8)

निष्कर्ष-: हम देखते हैं कि संपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा में धर्म के विविध पक्षों पर विचार किया गया है नीति, कर्तव्य, आचरण, कर्म आदि धर्म के ही स्वरुप है। ऋत, सत्य, तप, पुरुषार्थ, अस्तेय, शौच, इंद्रियनिग्रह,विद्या, स्वधर्म आदि सभी शक्तियां किसी भी व्यक्ति, समाज,राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है। व्यक्ति को अपने आप कुछ नियमों से आबद्ध करना चाहिए जिससे दूसरों को कष्ट ना हो ऐसी ही नियमों को धर्म की संज्ञा दी गई है। महाभारत हमें यह ज्ञान देता है, कि धर्म का निर्णय सदैव सरल नहीं होता। धर्म सर्वोच्च आदर्श को स्थापित करता है। अर्थात धर्म वही है जो मनुष्य को सत्यनिष्ठ, न्यायप्रिय और करुणाशील बनाए, इसीलिए महाभारत की युक्ति सार्थक प्रतीत होती है -धर्मो रक्षति रक्षितः जो धर्म की रक्षा करता है धर्म उसकी रक्षा करता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची -

श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर
मनुस्मृति, श्री पं. हरगोविन्दशास्त्री,चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी 1953.
याज्ञवल्क्यस्मृति, पं. थानेश्वर उप्रैती,
वैशेषिकदर्शन,उदयबीर शास्त्री,प्रकाशक-आर्यसाहित्य भवन विजय कुमार गोविंदराम हसानन्द
महाभारत, एक प्रमाणिक संस्करण,पूर्णप्रज्ञ दास
महाभारत,अनुवादक-पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री, पाण्डेय" राप्रकाशक-गोबिंद भवन कार्यालप, । गीताप्रेस, गोरखपुर सं. 20।2- ते 2050 तक सं. 2059
महाभारतकालीन समाज, लेखकभटटाचार्य, अनुवादिका- पुष्पा जैन,-डॉ, मोतीचन्द्र, प्रकाशक,लोकभारती प्रकाशन, 5-ए, महात्मा गाधीमार्गइलाहाबाद प्रथमसंस्करण 1966.
वैशेषिक दर्शन, पं. राजाराम
धर्मशास्त्र का इतिहास, डॉ पी.वी.काणे, उ० प्र० हिन्दी संस्थान, अनुवाद अर्जुन चौबे, 1992
ऋग्वेद, संपादक आर०रोथ और डब्ल्यू, डी. हिवदने, बर्लिन, 1856,अनुवादक - श्रीपाद शर्मा, औधंनगर,1958
भारतीय दर्शन ,डॉ .सर्वपल्लीराधाकृष्णन, भाग-२, अनुवादक - नन्दकिशो गोयल. द्वितीय सँस्करण,
सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती,मनोज पब्लिकेशन, दिल्ली 2010.
नीतिशतक,डॉ राजेश्वर शास्त्री मुसलगावंकर, चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी 2011
1. Shodhganga : a reservoir of Indian theses @ INFLIBNET
2. Sanskrit Hindi Kosh : Vaman Shivram.